वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 369
ISBN-978-93-82071-49-5

एकीभाव स्तोत्र विधान-पूजन

-मंगल प्रेरणा एवं आशीर्वाद -

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

-रचयित्री -

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

शरदपूर्णिमा महोत्सव-2012, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

फोन नं.- (01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
1100 प्रतियाँ	15 फरवरी 2013, बसंत पंचमी	16/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशक एवं सम्पादक:-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

-: प्रबंध सम्पादक :-

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश
स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

जिनागम रूपी अथाह ज्ञान समुद्र में बहुमूल्य रत्नों के समान अनमोल शास्त्रों का खजाना भरा पड़ा है, जिसका आलोढन करने पर जिनसंस्कृति की महानता का परिज्ञान होता है। जैनागम के चतुरनुयोगों में प्रथमानुयोग में वर्णित तीर्थंकर आदि महापुरुषों के जीवनवृत्त से अनेक ऐसे महत्त्वपूर्ण, जीवनोपयोगी, शिक्षास्पद और देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति में दृढ़ करने वाले पहलुओं से हम दृष्टिगत होते हैं, जो सहज ही स्वाध्यायी जीव के जीवन की दिशा बदल देते हैं।

आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव के अनुसार श्रावक के लिए दान और पूजन दोनों ही आवश्यक हैं, जिसमें पूजा के अन्तर्गत नित्य पूजाओं के अतिरिक्त नैमित्तिक पूजाओं में अनेकानेक मण्डल विधानादि की पूजाएँ की जाती हैं।

जीव के जब जन्म-जन्मांतरों का पुण्य संचित होकर एक साथ उदय में आता है तो जिनधर्म एवं जिनवाणी सुनने का साधन उसे प्राप्त होता है अन्यथा तो सभी संसारी प्राणी दिन रात अशुभोपयोग अर्थात् पाप क्रियाओं में संक्लेशित रहकर अपार कष्ट उठाते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि अशुभोपयोग से बचने के लिए प्रत्येक श्रावक को भगवान की भक्ति, पूजा, स्तोत्र पाठ, तीर्थयात्रा आदि करना चाहिए, जो शुभोपयोग के अंग हैं।

बीसवी-इक्कीसवीं शताब्दी में जहाँ परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने प्रथम बालब्रह्मचारिणी के रूप में दीक्षा लेकर साहित्य लेखन का अनुपमेय और अविस्मरणीय कार्य किया है, वहीं उनकी शिष्य परमपूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने उनके पथ का अनुसरण करते हुए अनेक सारभूत कृतियों की रचना की है, जिसमें से एक कृति ''एकीभाव स्तोत्र विधान'' है, जिसके द्वारा भाक्तिकजन प्रभु भक्ति का दिव्य स्रोत प्रवाहित कर रोग-शोक का परिहार करते हुए आरोग्यता को प्राप्त करें और कर्मनिर्जरा करते हुए सातिशय पुण्य का बंध करें, यही इस कृति के प्रकाशन की सार्थकता है।

प्रस्तावना

–ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

आनन्दाश्रु स्नपित वदनं गद्गदं चाभिजल्पन्,
यश्चायेत् त्वयि दृढमनाः स्तोत्रमंत्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देह-बल्मीक-मध्या-
न्निष्कास्यन्ते विविध विषमव्याधयः काद्रवेयाः।।

इस विनाशीक संसार में सच्चे देव, शास्त्र एवं गुरु की अकाट्य भक्ति प्राणी के रोग, शोक, शारीरिक, मानस, आगन्तुक सभी संकटों का निवारण कर मुक्तिश्री प्रदान करने में सक्षम है, जिसके अनेकानेक उदारहण शास्त्र पुराणों में वर्णित हैं, उनमें से ही एक उदाहरण विक्रम की 11वीं शताब्दी में हुए महान आचार्य श्री वादिराज मुनिराज का आता है।

पूर्वकृत पापोदय से शरीर में कुष्ट रोग हो जाने पर जब जिनधर्मद्वेषी विद्वान के द्वारा चौलुक्य नरेश जयसिंह (प्रथम) की राज्यसभा में जैन मुनियों को कोढ़ी कहकर उनका उपहास किया गया, उस समय राजश्रेष्ठी ने भक्तिवश जैन मुनियों की काया को स्वर्ण सम बताया। प्रातःकाल राजा के गुरुदर्शनार्थ जाने की इच्छा देखकर जब राजश्रेष्ठी ने गुरु से जिनधर्म की रक्षा हेतु सारी घटना सुनाई तब वादिराज मुनि ने जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में लीन होकर एकीभाव स्तोत्र की रचना की जिसके चमत्कारस्वरूप कुष्टरोग से पीड़ित मुनि का शरीर स्वर्ण के समान हो गया। प्रातः सबने मुनि के स्वर्ण समान शरीर के दर्शन किए और धर्मद्वेषियों का मान गलित हो गया, उस समय आचार्यश्री ने सबको जिनधर्म की महिमा बताकर सम्यक्त्व में दृढ़ कर दिया। इस कथा के अतिरिक्त भी मानतुंगाचार्य, धनन्जयकवि आदि के द्वारा जिनेन्द्र भक्ति करके स्तोत्र रचना करने से अतिशायि चमत्कार का वर्णन पुराणों में आता है।

वर्तमान में इस कलिकाल में भले ही त्रैलोक्यपूज्य जिनेन्द्र भगवान का समवसरण भरतक्षेत्र में नहीं है तथापि समस्त भरतक्षेत्र में जगत्प्रकाशिनी केवली भगवान की वाणी विद्यमान है तथा उस वाणी के आधारस्तंभ श्रेष्ठ रत्नत्रयधारी मुनि-आर्यिकादि भी हैं इसलिए उन पूज्य गुरुओं की आराधना तो सरस्वती की आराधना है तथा सरस्वती की आराधना साक्षात् केवली भगवान की आराधना है।

आर्ष परम्परा की रक्षा करते हुए आगम पथ पर चलना भव्यात्माओं का कर्त्तव्य है, तीर्थंकर भगवन्तों की दिव्यध्वनि से निःसृत, गणधरों द्वारा गूंथी गई तथा महान आचार्यों द्वारा लिपिबद्ध जिनवाणी की रक्षा, संवर्धन, प्रचार-प्रसार मार्गप्रभावना नाम की एक भावना तथा प्रभावना नामक सम्यग्दर्शन का अंग है। तीर्थंकरों की उसी देशनारूप आगम ग्रंथों को आधार बनाकर संसारी जीवों के कल्याणार्थ और अधिक सरल रूप में प्रवचन, ग्रंथरचना आदि के माध्यम से प्रदान करने का पवित्र कार्य हमारे परम स्तुत्य साधुगण कर रहे हैं, जिनमें सर्वोपरि नाम आता है चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर महाराज की परम्परा की सर्वप्राचीन दीक्षित साध्वी परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का। आगम को अपना प्राण मानने वाली पूज्य माताजी ने अब तक स्व-पर कल्याणार्थ 300 ग्रंथों की रचना कर जिनवाणी की महती प्रभावना की है।

उन्हीं पूज्य माताजी की विदुषी शिष्या, अर्जुन और चन्द्रगुप्त के समान गुरुभक्ति का अनुपम आदर्श प्रस्तुत करने वाली प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने रत्नत्रय साधना के साथ-साथ गुरुआज्ञा से अनेकों कृतियों की रचना की है। उनकी प्रत्येक रचनाएँ जनमानस में नई स्फूर्ति का संचार करते हुए जैनधर्म का मर्म सुधी पाठकों एवं भव्यात्माओं को समझाकर दिग्भ्रमित प्राणी को मुक्तिमार्ग पर अग्रसर करती हैं। मिष्टवाणी से संयुत, जीवन के प्रत्येक क्षण को आदर्श रूप में प्रस्तुत करने वाली ऐसी पूज्य माताजी के जीवन का प्रत्येक क्षण मोक्षमार्गोन्मुख प्राणी के लिए अनुकरणीय, अभिवन्दनीय एवं स्तुत्य है। पद्यलेखन की श्रृँखला में आचार्य श्री वादिराज रचित एकीभाव स्तोत्र पर रचित उनकी यह चमत्कारिक नूतन कृति ''एकीभाव स्तोत्र विधान'' है जिसमें एक समुच्चय पूजा, 25 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य एवं स्तोत्र की महिमा का वर्णन करने वाली जयमाला है, जिसे करके भाक्तिकजन अपने रोग, कष्ट आदि का निवारण कर इस लोक में आरोग्यमय शरीर की प्राप्ति के साथ अपनी आत्मा को भी स्वर्णसम बनाने में सक्षम हो सकते हैं। यह विधान करने, कराने वालों के मनोरथों की सिद्धि करे, यही शुभेच्छा है।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का मंगल आशीर्वाद

भगवान महावीर की परम्परा में अनेक पूर्वाचार्यों ने अपने कृतित्त्व से जिनशासन की महती प्रभावना की, अनेक महान आचार्यों ने जिनधर्म पर आए संकट को देखकर ऐसी अटूट जिनभक्ति द्वारा स्तोत्र आदि की रचना की जिसके चमत्कारस्वरूप धर्मद्वेषी अथवा संकट उत्पन्न करने वाले का मान गलित होकर वह सम्यग्दृष्टि बन गया, उन्हीं उदाहरणों में एक उदाहरण श्री वादिराज आचार्य का है जिनके द्वारा जिनभक्ति में तल्लीन होकर रचे गए ''एकीभाव स्तोत्र'' से स्वयं आचार्यश्री का कुष्ट रोग दूर होकर जिनधर्म का माहात्म्य प्रकट हुआ। वास्तव में जिनेन्द्र भगवान की भक्ति असाता कर्म को साता में परिवर्तित करने में सक्षम है जिसका अनुभव मुझे जीवन में कई बार आया है।

उसी जिनेन्द्रभक्ति के फलस्वरूप ही मैंने अनेक विधानों के माध्यम से जिनेन्द्र प्रभु का गुणगान किया और अपने शिष्यवर्ग को भी यही प्रेरणा देती रहती हूँ। वस्तुतः इस एकीभाव स्तोत्र की अचिन्त्य महिमा है और इस पर रचित विधान की मांग आने पर मैंने अपनी शिष्या आर्यिका चन्दनामती को इसकी रचना करने की प्रेरणा दी। मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है कि उन्होंने मात्र दो दिन में ही अत्यन्त सुन्दर शब्दों में इसकी रचना कर दी।

आर्यिका चन्दनामती जी वर्तमान समय में प्रत्येक शिष्य के लिए न सिर्फ एक आदर्श उदाहरण हैं अपितु मेरे द्वारा निर्देशित प्रत्येक लघु एवं वृहत्कार्य को शिरोधार्य कर उसे पूरे जोश, पूर्ण समर्पण के साथ परिपूर्ण कर सफलता के शिखर तक पहुँचाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। उनकी आगमोक्त लेखनी में भव्यात्मा जीव को सद्राह दिखाने की अद्भुत क्षमता है, वे सदैव इसी प्रकार देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति करते हुए अपनी आत्मा को उन्नति के चरमोत्कर्ष पर पहुँचावें और उनके द्वारा रचित यह विधान प्रत्येक करने-कराने वालों की शारीरिक, मानस, आगंतुक व्याधियों का क्षय कर, नीरोग शरीर प्रदान कर लौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय की प्राप्ति कराने में सहायक सिद्ध हो यही मेरा मंगल आशीर्वाद है।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान- टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
जन्मतिथि- आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)
जाति- अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र-** गोयल, **नाम-** कु. मैना
माता-पिता- श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन
आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत- ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन
क्षुल्लिका दीक्षा- चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम- क्षुल्लिका वीरमती
आर्यिका दीक्षा- वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।
साहित्यिक कृतित्व- अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।
डी.लिट्. की मानद उपाधि- सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।
तीर्थ निर्माण प्रेरणा- हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा- भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमामहावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थइत्यादि।
महोत्सव प्रेरणा- पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डलविधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**
शैक्षणिक प्रेरणा- 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।
रथ प्रवर्तन प्रेरणा- जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

पुस्तक की रचयित्री, पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका
श्री चन्दनामती माताजी का संक्षिप्त परिचय

-ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

नाम- प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी
दीक्षा पूर्व नाम- ब्र. कु. माधुरी शास्त्री
जन्मतिथि- 18-5-1958 (ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या)
जन्मस्थान- टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
माता-पिता- श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जी जैन
भाई- चार (कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी,कैलाशचंद, स्व. प्रकाशचंद, सुभाषचंद)
बहन- आठ (गणिनी आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी एवं आर्यिका श्री अभयमती माताजी सहित)
ब्रह्मचर्य व्रत- 25 अक्टूबर 1969 को जयपुर में 2 वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत एवं सन् 1971, अजमेर में आजन्म ब्रह्मचर्य सुगंधदशमी को गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी से।
धार्मिक अध्ययन- 1972 में सोलापुर से ''शास्त्री'' की उपाधि, 1973 में ''विद्यावाचस्पति'' की उपाधि।
द्वितीय एवं सप्तम प्रतिमा के व्रत- सन् 1981 एवं 1987 में गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी से।
आर्यिका दीक्षा- हस्तिनापुर में 13-8-1989, श्रावण शु. 11 को गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी से
प्रज्ञाश्रमणी की उपाधि- 1997 में चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान के पश्चात् राजधानी दिल्ली में पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा।
पीएच.डी. की मानद उपाधि- तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को विश्वविद्यालय में।
साहित्यिक योगदान- चारित्रचन्द्रिका, तीर्थंकर जन्मभूमि विधान, नवग्रहशांति विधान, भक्तामर विधान, समयसार विधान आदि लगभग 100 पुस्तकों का लेखन, वर्तमान में पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा ''षट्खण्डागम (प्राचीनतम जैन सूत्र ग्रंथ) एवं ''भगवान ऋषभदेव चरितम्'' की संस्कृत टीकाओं का हिन्दी अनुवाद कार्य, 'समयसार' एवं 'कुन्दकुन्दमणिमाला' का हिन्दी पद्यानुवाद, भगवान महावीर स्तोत्र की संस्कृत एवं हिन्दी टीका, भगवान महावीर हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोष, जैन वर्शिप (अंग्रेजी में पूजा, भजन, बारहभावना आदि), भजन (लगभग 1000), पूजन, चालीसा, स्तोत्र इत्यादि लेखन की अद्भुत क्षमता, हिन्दी भाषा के साथ-साथ अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं की सिद्धहस्त लेखिका, गणिनी ज्ञानमती गौरव ग्रंथ एवं भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि ग्रंथ की प्रधान सम्पादिका।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

—जीवन प्रकाश जैन (प्रबंध सम्पादक)

ईसवी सन् 1972 में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से स्थापित उक्त संस्था के द्वारा जम्बूद्वीप रचना के निर्माण हेतु मेरठ (उ.प्र.) के ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर में नशिया मार्ग पर जुलाई 1974 में एक भूमि क्रय की गई, जहाँ सर्वप्रथम 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की अवगाहना प्रमाण सात हाथ (सवा दस फुट) ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान करने हेतु फरवरी 1975 में एक लघुकाय जिनालय का निर्माप किया गया, जो सन् 1990 में एक अनोखे 'कमल मंदिर' के रूप में निर्मित हुआ है। यहाँ विराजमान कल्पवृक्ष भगवान महावीर से यह अतिशय क्षेत्र निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर होता हुआ नित्य नये निर्माणों के द्वारा संसार में अद्वितीय पर्यटन स्थल के रूप में प्रसिद्ध हुआ है। इस प्रतिमा के दर्शन करके भक्तगण अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं।

जम्बूद्वीप निर्माण का प्रथम चरण—जुलाई सन् 1974 में रखी गई नींव के आधार पर जम्बूद्वीप के बीचोंबीच में सर्वप्रथम आगम वर्णित सुमेरुपर्वत (101 फुट ऊँचा) का निर्माण अप्रैल सन् 1979 में एवं सन् 1985 में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण पूर्ण हुआ। सोलह जिनमंदिरों से समन्वित उस सुमेरुपर्वत के अंदर से निर्मित 136 सीढ़ियों से चढ़कर श्रद्धालु भक्त समस्त भगवन्तों के दर्शन करके जब सबसे ऊपर पाण्डुकशिला के निकट पहुँचते हैं, तो नीचे जम्बूद्वीप रचना के सभी नदी, पर्वत, मंदिर, उपवन आदि दृश्यों के साथ-साथ हस्तिनापुर के आसपास के सुदूरवर्ती ग्रामों का भी प्राकृतिक सौंदर्य देखकर फूले नहीं समाते हैं।

यात्री सुविधा—हस्तिनापुर तीर्थ में जम्बूद्वीप स्थल के पूरे परिसर में संस्थान द्वारा कार्यालय का सक्रिय संचालन किया जाता है। वहाँ यात्रियों के ठहरने हेतु आधुनिक सुविधायुक्त 200 कमरे, 50 से अधिक डीलक्स फ्लैट एवं अनेकों गेस्ट हाउस (बंगले) बने हुए हैं। इसके साथ ही यहाँ सुन्दर भोजनालय है जहाँ यात्रियों को सुविधापूर्वक शुद्ध भोजन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त 2 किमी. दूर हस्तिनापुर सेन्ट्रल टाउन में सरकारी अस्पताल, डाकखाना, बाजार, इंटरकालेज तथा अन्य शिक्षण संस्थाएँ आदि सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

हस्तिनापुर कैसे पहुँचे ?—भारत की राजधानी दिल्ली से 110 किमी. पश्चिमी उत्तरप्रदेश में जिला-मेरठ से 40 किमी. दूर हस्तिनापुर तीर्थ है। राजधानी दिल्ली से हस्तिनापुर के लिए अंतर्राज्यी बस अड्डे अथवा आनंद विहार बस अड्डे से उत्तरप्रदेश रोडवेज तथा डी.टी.सी. बसों की निरंतर सेवा उपलब्ध है। मेरठ से भी प्रति आधे घंटे के अंतराल से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पहुँचने हेतु रोडवेज की बसें सुलभता के साथ उपलब्ध रहती हैं। 'जम्बूद्वीप' के नाम से ये बसें चलती हैं जो सीधे जम्बूद्वीप के सामने ही रुकती हैं और जम्बूद्वीप से ही मेरठ, दिल्ली, तिजारा आदि यात्रा हेतु बसें उपलब्ध रहती हैं। दिल्ली और मेरठ के बीच रेल सेवा भी है। देश-विदेश के यात्रीगण हस्तिनापुर पधारकर इस धरती का स्वर्ग मानी जाने वाली 'जम्बूद्वीप रचना' के दर्शन करें और मानसिक शांति का अनुभव करते हुए मनवांछित फल प्राप्त करें, यही मंगलकामना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, रोशनावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कॉनट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. स्व. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., श्री अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
21. श्रीमती आदर्श जैन ध.प. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
22. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)।

एकीभाव स्तोत्र विधान-पूजन

मंगलाचरण

अरहंत देव को नमूँ जो सौख्य प्रदाता,
सिद्धों को नमूँ जो हैं भवि को सिद्धिप्रदाता।
आचार्य, उपाध्याय, साधु परम पूज्य हैं,
इनकी करूँ मैं वन्दना दें सर्व सौख्य है।।1।।

श्री ऋषभदेव वीर जिन हैं चतुर्विंशती,
प्रणमूँ मैं भक्तिभाव से उन चरण में नती।
गौतम गणीश आदि गणधरों को नित नमूँ,
उन क्रम परम्परा में अखिल साधु को प्रणमूँ।।2।।

उनमें ही वादिराज सूरि जग में ख्यात हैं,
स्तोत्र रचा एकीभाव जो विख्यात है।
अतिशायि चमत्कार से परिपूर्ण यह कृती,
तन का मिटा था कुष्ट, हुई काया स्वर्ण सी।।3।।

चारित्र चक्रवर्ति शांतिसिंधुवर्य को,
वंदूँ मैं वीरसिन्धु प्रथम पट्टशिष्य को।

उनकी ही शिष्या ज्ञानमती मात को नमूँ,
पथ मुक्तिमार्ग का दिखाया कोटिशः प्रणमूँ।।4।।

उनके पदारविंद में जीवन है समर्पण,
उनकी ही प्रेरणा उन्हें ये कृती है अर्पण।
मैंने ये एकीभाव का विधान बनाया,
तीर्थंकरों की भक्ति में गुणगान है गाया।।5।।

अतिशायि यह विधान रोग, शोक दुख हरे,
हों पूर्ण मनोरथ भविक शिवांगना वरें।।
जिनदेव को मैं बार-बार भक्ति से नमूँ।
पूजन करूँ प्रारंभ मैं पुष्पांजली करूँ।।6।।

।।अथ विधियज्ञप्रतिज्ञापनाय मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।।

एकीभाव स्तोत्र विधान-पूजन

– स्थापना (शंभु छंद)–

तीर्थंकर प्रभु की भक्ति सदा ही, सच्चे सुख को देती है।
वह दुर्गति का वारण करके, भव-भव के दुख हर लेती है।।
श्रीवादिराज मुनि ने प्रभु भक्ति से, तन का कुष्ट मिटाया था।
निज काया को कर स्वस्थ स्वर्णमय, धर्मरूप दर्शाया था।।1।।

– दोहा–

प्रभु भक्ती में रच दिया, एकीभाव स्तोत्र।
तब से ही यह बन गया, रोग निवारक स्रोत।।2।।
मैं भी तन-मन स्वस्थता, हेतु जजूँ प्रभु आप।
आह्वानन स्थापना, करूँ बनूँ निष्पाप।।3।।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्री तीर्थंकरपरमदेव! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्री तीर्थंकरपरमदेव! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्री तीर्थंकरपरमदेव! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

– अथ अष्टक–

तर्ज-कहूँ मैं जिनवर जिनवर.....

नीर की झारी लेकर, करूँ त्रयधार प्रभू पद,
तीर्थंकर प्रभु करना कृपा अब मुझ पर, हे प्रभु मुझ पर-2।।कलश.।।
सरयू नदि का जल लाकरके, पूजन करूँ जल धारा करके।
जनम मरण मेरा नाश करो हे प्रभुवर! हे प्रभु मुझपर।।नीर की.।।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्री तीर्थंकरपरमदेवाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सुगंधित चन्दन लेकर, करूँ चर्चन मैं प्रभु पद,
तीर्थंकर प्रभु करना कृपा अब मुझ पर, हे प्रभु मुझ पर।।सुगंधित.।।टेक.।।
मन मेरा शीतल हो जावे, प्रभु पूजन में जब रम जावे।
भव आतप नश जावे मेरा अब प्रभुवर, हे प्रभु मुझपर।।सुगंधित.।।2।।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्री तीर्थंकरपरमदेवाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अखण्डित तन्दुल लेकर, पुंज अर्पूं प्रभु सम्मुख,
तीर्थंकर प्रभु करना कृपा अब मुझ पर, हे प्रभु मुझ पर।।अखण्डित.।।टेक.।।
मेरे सब दुःखों का क्षय हो, प्रभु पूजन का फल अक्षय हो।
वह अक्षय पद मिल जावे मुझे प्रभुवर, हे प्रभु मुझ पर।।अखण्डित.।।3।।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्री तीर्थंकरपरमदेवाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प अंजलि में लेकर, चढ़ाऊँ जिनवर सम्मुख,
तीर्थंकर प्रभु करना कृपा अब मुझ पर, हे प्रभु मुझ पर।।पुष्प.।।टेक.।।
विषयसुखों में अब न रमूँ मैं, पूजन कर प्रभु पद में नमूँ मैं।
कामबाण नश जावे मेरा अब प्रभुवर, हे प्रभु मुझ पर।।पुष्प.।।4।।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्री तीर्थंकरपरमदेवाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

थाल नैवेद्य का लेकर, चढ़ाऊँ जिनवर सम्मुख,
तीर्थंकर प्रभु करना कृपा अब मुझ पर, हे प्रभु मुझपर।।थाल.।।टेक.।।
सरस मधुर व्यंजन बहु खाए, फिर भी भूख नहिं मिट पाए।
पूजन कर क्षुधरोग नशे मेरा प्रभुवर, हे प्रभु मुझपर।।थाल.।।5।।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्री तीर्थंकरपरमदेवाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वर्ण का दीपक लेकर, आरती कर लूँ प्रभुवर,
तीर्थंकर प्रभु करना कृपा अब मुझ पर, हे प्रभु मुझ पर।।स्वर्ण.।।टेक.।।

मोहतिमिर छाया है जग में, दीपक ले पूजन करूँ अब मैं।
मोहतिमिर नश जावे मेरा अब प्रभुवर, हे प्रभु मुझ पर।।स्वर्ण..।।6।।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्री तीर्थंकरपरमदेवाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप सुरभित मैं लेकर, जलाऊँ जिनवर सम्मुख,
तीर्थंकर प्रभु करना कृपा अब मुझ पर, हे प्रभु मुझपर।।धूप.।।टेक.।।
काल अनादि से कर्म लगे संग, करने आया मैं प्रभु पूजन।
कर्म मेरे नश जावें सभी अब प्रभुवर, हे प्रभु मुझपर।।धूप.।।7।।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्री तीर्थंकरपरमदेवाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फलों की थाली लेकर, चढ़ाऊँ जिनवर सम्मुख,
तीर्थंकर प्रभु करना कृपा अब मुझ पर, हे प्रभु मुझ पर।।फलों.।।टेक.।।
खट्टे मीठे फल बहु खाए, फिर भी तृप्ति नहिं कर पाए।
पूजन कर शिवफल मिल जावेहे जिनवर, हे प्रभु मुझ पर।।फलों की.।।8।।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्री तीर्थंकरपरमदेवाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट द्रव्यों को लेकर, अर्घ्य अर्पूं प्रभु सम्मुख।
तीर्थंकर प्रभु करना कृपा अब मुझ पर, हे प्रभु मुझ पर।।अष्ट.।।टेक.।।
पूज्य परमपद पाने हेतू, अर्घ्य 'चन्दनामती' समर्पूं।
भव भव में नहिं भ्रमण करूँ अब जिनवर, हे प्रभु मुझ पर।।अष्टद्रव्यों.।।9।।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्री तीर्थंकरपरमदेवाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-दोहा-

तन मन शीतल हेतु मैं, कर लूँ शांतीधार।
श्री जिनवर पद सेतु हैं, भवदधि होने पार।।10।।

शांतये शांतिधारा।

पुष्पांजलि प्रभु पद करूँ, पुष्प सुगंधित लाय।
नरतन निज सुरभित करूँ, गुण सुगंधि को पाय।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य

-दोहा-

नाथ! आपकी अर्चना, सब सुख देन समर्थ।
पुष्पांजलि कर प्रार्थना, करूँ आत्म सिद्ध्यर्थ।।1।।

इति मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

-मन्दाक्रान्ता छंद-

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्म-बन्धो,
घोरं दुःखं भव-भव-गतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिन-रवे! भक्तिरुन्मुक्तये चेज्-
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः।।1।।

(1)

तर्ज-चन्दाप्रभु के दर्शन करने सोनागिरि को जाऊँगी.....

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

हे जिनसूर्य! मेरी आत्मा के, संग कर्म तन्मयता से।
बंधते रहते हैं अनादि से, दुख देते निर्दयता से।।

उनसे मुक्ती पाने हेतू, तेरी भक्ती करना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

जब ये दुर्निवार बन्धन भी तुम वन्दन से कटते हैं।
तब भौतिक संताप भला क्यों नहिं जीते जा सकते हैं।।

सब संताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं एकीभावसदृशकर्मबंधनाशनसमर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्योतीरूपं दुरित-निवहध्वान्त-विध्वंस-हेतुं,
त्वामेवाहुर्जिनवर! चिरं तत्त्व-विद्याभियुक्ताः।
चेतोवासे भवसि च मम स्फार-मुद्दासमान-
स्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे।।2।।

(2)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

तत्त्वज्ञानि गणधर मुनि सब, चिरकाल से तुमको ध्याते हैं।
पाप तिमिर के नाश हेतु, तुमको ही ज्योति बताते हैं।।

तेरी दिव्यज्योति से प्रभुवर! अन्तस्तम को हरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

निज मानस में मैंने तुमको, अच्छी तरह बिठाया है।
पाप तिमिर बस इसीलिए, नहिं पास फटकने पाया है।।

सब संताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं हृदयस्थितपापान्धकारविनाशनसमर्थाय ज्योतीरूपाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आनन्दाश्रु-स्नपित-वदनं गद्गदं चाभिजल्पन्,
यश्चायेत त्वयि दृढ-मनाः स्तोत्र-मन्त्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देह-वल्मीक-मध्यान्-
निष्कास्यन्ते विविध-विषम-व्याधयः काद्रवेयाः।।3।।

(3)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

अन्तर्मन का हर्ष अश्रु बन, जब आँखों से छलकता है।
वही समर्पण भक्तों की, शारीरिक व्याधि को हरता है।।

तन वामी की सभी व्याधियाँ, दूर मुझे अब करना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

जैसे मंत्रों से वामी के, सांप भी बाहर आते हैं।
वैसे ही प्रभु भक्ती से, तन रोग सभी भग जाते हैं।।

सब संताप निवारणहित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं स्तोत्रमंत्रप्रभावेन देहस्थविषमव्याधिनिष्कासनसमर्थाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रागेवेह त्रिदिव-भवनादेष्यता भव्यपुण्यात्,
पृथ्वी-चक्रं कनकमयतां देव! निन्ये त्वयेदम्।
ध्यान-द्वारं मम रुचिकरं स्वान्त-गेहं प्रविष्ट-
स्तत्किं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि।।4।।

(4)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

भव्यों के पुण्योदय से, हे नाथ! धरा पर आते हो।
मातगर्भ में आने से, पहले हि रतन बरसाते हो।।

पृथ्वी स्वर्णमयी हो जाती, आगम का यह कहना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

वैसे ही मम ध्यान द्वार से, हो प्रविष्ट मन में तन को।
व्याधिरहित कर दो सुवर्णमय, इसमें क्या आश्चर्य अहो।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं गर्भावतारप्राक्पृथ्वीकनकमयकरणसमानभाक्तिकतनुसुवर्णीकरण-समर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धु-
स्त्वय्येवासौ सकल-विषया शक्तिरप्रत्यनीका।

भक्ति-स्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्तशय्यां
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेश-यूथं सहेथाः।।5।।

(5)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

नाथ! आप जग भर के अकारण, बन्धु सदा कहलाते हो।
सब पदार्थ के ज्ञाता बाधा रहित, सुखी कहलाते हो।।
अद्वितीय तुम शरण प्राप्त कर, शाश्वत सुखमय बनना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

मेरी मनरूपी पवित्र, शय्या पर सदा निवास करो।
मुझमें संभव दुख समूह को, जिनवर! शीघ्र विनाश करो।।
सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं भक्तजनहृदयस्थिततत्सर्वक्लेशविनाशनसमर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्माटव्यां कथमपि मया देव! दीर्घं भ्रमित्वा,
प्राप्तैवेयं तव नय-कथा स्फार-पीयूष-वापी।
तस्या मध्ये हिमकर-हिम-व्यूह-शीते नितान्तं,
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख-दावोपतापाः।।6।।

(6)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

स्वामिन्! मैंने काल अनादी से, जग में परिभ्रमण किया।
अब अमृतरसभरी बावड़ी, बड़े कष्ट से प्राप्त किया।।
स्याद्वाद नय कथा आपकी, मगन उसी में रहना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

चन्द्रबिम्ब अरु बर्फ से भी, शीतल जल भरा बावड़ी में।
उसमें कर स्नान मेरे, सारे दुख क्षय होंगे क्षण में।।
सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं त्वन्नयकथापीयूषवापीमध्यनिर्मग्नभाक्तिकदुःखदावोपतापशांतकरण-समर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाद-न्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं,
हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः।
सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे,
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति।।7।।

(7)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

श्रीविहार से प्रभो! आपने, सारा जगत पवित्र किया।
तुम पदतल स्पर्श मात्र से, कमल सुगंधित स्वर्ण हुआ।।
लक्ष्मीगृह बन गया कमल, इस अतिशय का क्या कहना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

मैंने तो सर्वांग से प्रभुवर, आपको है स्पर्श किया।
अतः सर्वकल्याणमयी, सुख को अब मैंने प्राप्त किया।।
सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं पादन्यासस्थलस्वर्णकमलमिव त्वत्स्पृशन्ममभक्तस्य सर्वश्रेयः-प्रदायकाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्ति-पात्र्या पिबन्तं,
कर्मारण्यात्पुरुषमसमानन्द-धाम-प्रविष्टम्।
त्वां दुर्वार-स्मर-मद-हरं त्वत्प्रसादैक-भूमिं,
क्रूराकाराः कथमिव रुजा कण्टका निर्लुठन्ति।।8।।

(8)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

कर्मरूप वन से अनुपम, आनन्द धाम शिवपद पाया।
दुर्जय कामदेव का मद हर, विजयपताका लहराया।।

ऐसे हे जिन! तुमको लखकर, नेत्र सफल अब करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

भक्ति कटोरे से तव वचनामृत, का पान करें जो भी।
क्रूराकार रोग कण्टक, उनके नश जाते शीघ्र सभी।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं भक्तिपात्र्या त्वद्वचनामृतपिबन् भाक्तिकदुर्वाररोगनिवारणसमर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्न-मूर्ति-
र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्न-वर्गः।
दृष्टिं प्राप्तो हरति स कथं मान-रोगं नराणां,
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्ति-हेतुः।।9।।

(9)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

पाषाणों से निर्मित, मानस्तंभ इतर पत्थर सम है।
रत्नमयी होने पर भी, उसमें विशेषता ही कम है।।

उस विशेषता में केवल, प्रभु का अतिशय ही कहना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

मान नष्ट होता है सबका, मानस्तंभ देखने से।
प्रभु सामीप्य बिना नहिं संभव, है यह मात्र निरखने से।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं मानस्तम्भसदृश-त्वत्समीपत्वप्राप्तभाक्तिकजनमानरोगहरणसमर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ह्रद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्ति-शैलोपवाही,
सद्यः पुंसां निरवधि-रुजा धूलिबन्धं धुनोति।
ध्यानाहूतो ह्रदय-कमलं यस्य तु त्वं प्रविष्ट-
स्तस्याशक्यः क इह भुवने देव! लोकोपकारः।।10।।

(10)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

तव तन पर्वत निकट से बहने, वाली वायु मनोहर से।
जन जन के बहुतेक रोग, नश जाते धूलि धरोहर से।।

उसी वायु से मुझे भी अपने, रोग नष्ट सब करना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

जो जन तुम्हें ध्यान के द्वारा, ह्रदय कमल में धरते हैं।
इस जग में वे भव्योत्तम, लोकोपकार बहु करते हैं।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं त्वन्मूर्तिस्पर्शितवायुना निरवधिरोगधूलिधुन्वन्समर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जानासि त्वं मम भवे-भवे यच्च यादृक् च दुःखं,
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या,
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव! एव प्रमाणम्।।11।।

(11)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

भव भव में मैंने अगणित दुख, जो भी पाए हैं जिनवर!
आप जानते हैं सबको, जिनका सुमिरन भी है दुखकर।।

शस्त्र सदृश आघात पहुँचता, उसे याद नहिं करना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

आप दयालू सबके स्वामी, अतः आप ढिग आया अब।
करना है जो करो आप ही, हो प्रमाण यह पाया अब।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं भाक्तिकजनभव-भवदुःखनिवारणसमर्थपरमदयालुसर्वेशाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रापद्दैवं तव नुति-पदैर्जीवकेनोपदिष्टैः,
पापाचारी मरण-समये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः सन्देहो यदुपलभते वासव-श्री-प्रभुत्वं,
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कार-चक्रम्।।12।।

(12)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

जीवन्धर ने इक कुत्ते को, णमोकार का मंत्र दिया।
मरण समय वह पापाचारी, सुन करके यक्षेन्द्र हुआ।।

मुझको भी तुम पद में नत हो, नाम तुम्हारा जपना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

मणियों की माला से जो भी, नाममंत्र तुम जपते हैं।
इसमें नहिं संदेह कि वे, इन्द्रों का वैभव लभते हैं।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं मणिजयमालिकया त्वन्नमस्कारमंत्रजपद्भाक्तिकगणस्वर्गलक्ष्मीप्रभुत्व-करणसमर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधि-सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो,
मुक्ति-द्वारं परिदृढ-महामोह-मुद्रा-कवाटम्।।13।।

(13)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

शुद्ध ज्ञान निर्मल चरित्रयुत, जो नर तुमको ध्याते हैं।
अनवधि सुख की हेतु भक्ति, कुंजी को साथ में लाते हैं।

इस कुंजी से मुक्तिद्वार को, खोल सिद्धि को वरना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

इस युक्ती के बिना मुमुक्षू, सुख का सार न तोल सकें।
महामोह मुद्रा से अंकित, दृढ़ कपाट नहिं खोल सकें।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं अनवधिस्त्वदुत्कृष्टभक्तिकुञ्चिकानिमित्तेन मुक्तिद्वारोद्घाटन-कारणसमर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रच्छन्नः खल्वयमघमयैरन्धकारैः समन्तात्,
पन्था मुक्तेः स्थपुटित-पदः क्लेश-गर्तैरगाधैः।
तस्कस्तेन व्रजति सुखतो देव! तत्त्वावभासी,
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारती रत्न-दीपः।।14।।

(14)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

यह शिवपथ पापाधंकार से, ढका हुआ चौतरफा है।
दुखरूपी गड्ढों से है यह, विषम न मारग दिखता है।।
वहाँ पहुँचने हेतु मात्र प्रभु! तत्वज्ञान का शरणा है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

तव वाणी सम रत्न दीप का, यदि प्रकाश नहिं हो आगे।
तब न कोई नर चल सकता है, उस पथ पर आगे आगे।।
सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं भवद्भारतीरत्नदीपेन मुक्तिपथावलोकनसामर्थ्यप्रदायकाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म-ज्योतिर्निधि-रनवधि-र्द्रष्टुरानन्द-हेतुः,
कर्म-क्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्यः परेषाम्।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः,
स्तोत्रैर्बंध-प्रकृति-परुषोद्दाम-धात्री-खनित्रैः।।15।।

(15)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

आत्मज्ञान की ज्योतिरूप, सम्पत्ति कर्म से आच्छादित।
मिथ्यात्वी को प्राप्त न हो यह, ज्ञानी होते आल्हादित।।
यही आत्म ज्योती अब मुझको, प्राप्त हृदय में करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

प्रकृति बंध आदिक कठोर, भूमी को भक्ति कुदाली से।
खोद खोद कर भव्य शीघ्र, हो जाते गुणमणि माली हैं।।
सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं कर्मक्षोणीपिहितात्मज्योतिर्निधिप्रदायकाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्युत्पन्ना नय-हिमगिरे-रायता चामृताब्धेः,
या देव! त्वत्पद-कमलयोः संगता भक्ति-गङ्गा
चेतस्तस्यां मम रुचि-वशादाप्लुतं क्षालितांहः,
कल्माषं यद्भवति किमियं देव! सन्देह-भूमिः।।16।।

(16)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

नय हिमगिरि से निकली तव, पदकमल भक्ति की गंगा है।
मुक्तिरूप सागर तक लम्बी, यह सच्ची शिवगंगा है।।
उसमें रुचिवश डूब डूब कर, स्वच्छ निजातम करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

इस भक्ति गंगा में नहाकर, पाप कालिमा धुलती है।
इसमें नहिं संदेह है कोई, मुक्ति इसी से मिलती है।।
सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं त्वद्भक्तिगंगामध्यावगाहकभक्तगणसर्वकल्मषक्षालनसमर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रादुर्भूत-स्थिर-पद-सुखं त्वामनुध्यायतो मे,
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्ति-मभ्रेषरूपां,
दोषात्मानोऽप्यभिमत-फलास्त्वत्प्रसादाद् भवन्ति।।17।।

(17)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

निश्चल सुख को प्राप्त तुम्हारा, ध्यान हृदय को भाता है।
जो तुम हो मैं भी वह हूँ, यह भाव उपज ही जाता है।।

यद्यपि यह मिथ्या है फिर भी, मन सन्तुष्ट तो करना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

ऐसा चिन्तन भी अविनाशी, सुख को प्राप्त कराता है।
तव प्रसाद से क्योंकि सदोषी, भी इच्छित फल पाता है।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं त्वद्ध्यायन्भाक्तिकस्य सोऽहमितिमतिप्रदायकाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यावादं मल-मपनुदन्सप्तभङ्गी-तरङ्गै-
र्वागम्भोधि-र्भुवन-मखिलं देव! पर्येति यस्ते।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश-चेतसैवाचलेन,
व्यातन्वन्तः सुचिर-ममृतासेवया तृप्नुवन्ति।।18।।

(18)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

सप्तभंगमय अनेकान्त, लहरों का सागर लहराता।
तव वचनों के वारिधि से, मिथ्यात्व दुराग्रह नश जाता।।

परवस्तू में आत्मबुद्धि की, मिथ्या भ्रान्ती तजना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

मिथ्या एकान्तों का घेरा, सारे जग में फैला है।
उसे हटाने में समर्थ, बस तव वच सिन्धु अकेला है।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं सप्तभंगीतरंगयुत-त्वद्वाक्समुद्रमंथनोद्भवपरमामृतप्रापकाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः,
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः।

सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां,
तत्किं भूषा-वसन-कुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः।।19।।

(19)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

जो स्वभाव से सुंदर नहिं, वे वस्त्राभरण पहनते हैं।
जो अयोग्य हैं विजय प्राप्ति में, शस्त्र ग्रहण वे करते हैं।।

मुझको स्वाभाविक आत्मिक, सौंदर्य प्राप्त अब करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

नाथ आप सर्वांग सुभग हो, शत्रु न जीत तुम्हें सकते।
वस्त्राभरण व शस्त्रों के, अतएव न तुम धारण करते।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं शस्त्रवसनभूषाविरहितपरमसुंदरस्वरूपाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते,
तस्यैवेयं भव-लय-करी श्लाघ्यता-मातनोति।
त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धि-कान्ता-पतिस्त्वं,
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम्।।20।।

(20)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

इन्द्र आपकी सेवा करता, इससे आप बड़े नहिं हैं।
किन्तु इन्द्र की सेवा उसके, लिए प्रशंसित जग में है।।

मुझको भव दुख नाश हेतु, अब तुम सेवा ही करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

तुम संसार जलधि से सबको, पार लगाने वाले हो।
सिद्धिप्रिया के पति त्रिभुवन-अधिपति सबके रखवाले हो।।
सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं भवसमुद्रपारंगतसिद्धिकान्तापतित्रैलोक्यप्रभुस्तुतिश्लाघनाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वृत्तिर्वाचामपर-सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः,
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्! भक्ति-पीयूष-पुष्टा-
स्ते भव्यानामभिमत-फलाः पारिजाता भवन्ति।।21।।

(21)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

नाथ! हमारी वाणी तो, सब अल्पज्ञों के ही सम है।
किन्तु आप तो अतुलनीय, तीनों लोकों में अनुपम हैं।।
स्तुति के उद्गार हमारे, फिर भी स्वीकृत करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

चाहे वचन न पहुँचे तुम तक, नाथ हमारी भक्ती के।
फिर भी इच्छित फल देंगे, क्योंकी भक्ती में शक्ती है।।
सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं भक्तिपीयूषपुष्टभव्यगणाभिमतफलप्रदपारिजाताय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो,
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयै-वानपेक्षम्।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधि-वैंर-हारी,
क्वैवं भूतं भुवन-तिलकं प्राभवं त्वत्परेषु।।22।।

(22)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

नहीं किसी पर क्रोध आपको, नहीं किसी से प्रेम करें।
स्वार्थ रहित है चित्त आपका, केवल निज में नेह धरें।।
जग से उदासीन हो क्योंकी, आतम में बस रमना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

फिर भी जग आधीन आपकी, ही समीपता चाह रहा।
नहीं आपसे भिन्न किसी में, यह आकर्षण बांध रहा।।
सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं कोपप्रसादविरहितपरमोपेक्षि-भुवनतिलकप्राभवसहिताय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

देव! स्तोतुं त्रिदिव-गणिका-मण्डली-गीत-कीर्तिं,
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्तिर्जनो यः।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्थाः
तत्त्वग्रन्थ-स्मरण-विषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः।।23।।

(23)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

जिनकी कीर्ति के गीत, देवियों का समूह भी गाता है।
सकल विषय के ज्ञाता जिनवर, का यश बढ़ता जाता है।।
मुझे आपकी धवल कीर्ति का, सुमिरन ही अब करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

ऐसे प्रभु के भक्त कभी, शिवपथ से नहीं भटकते हैं।
तत्त्वग्रंथ स्मरण विषय में, मूर्च्छित हो न अटकते हैं।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं सकलतत्त्वग्रन्थस्मरणविषयिबुद्धिप्रदायकाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चित्ते कुर्वन्निरवधि-सुख-ज्ञान-दृग्वीर्य-रूपं,
देव! त्वां यः समय-नियमादाऽऽदरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृतिस्तावता पूरयित्वा,
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम्।।24।।

(24)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

तुम अनन्तसुख ज्ञान दर्श अरु, वीर्य चतुष्टय धारी हो।
तुमको मन में धारण करने-वाला नर अविकारी हो।।

तीनों कालों में प्रभु तुम प्रति, विनयभाव को धरना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

निश्चय ही स्तोता नर को, पंचकल्याणक मिलते हैं।
श्रेयोमार्ग प्राप्त करके वे, सिद्धिप्रिया से मिलते हैं।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं अनंतसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपाय भाक्तिकजनपञ्चकल्याणप्रदायकाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–शार्दूलविक्रीडितछंद –

भक्ति-प्रह्व-महेन्द्र-पूजित-पद! त्वत्कीर्तने न क्षमाः
सूक्ष्म-ज्ञान-दृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम्।
अस्माभिः स्तवन-च्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते
स्वात्माधीन-सुखैषिणां स खलु नः कल्याण-कल्पद्रुमः।।25।।

(25)

हे जिनेन्द्रप्रभु! तुम भक्ती से, भवसागर को तरना है।
मनमंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।टेक.।।

भक्ति विनत इन्द्रों से पूजित, जिनवर पदयुग मनहारी।
उनके गुणकीर्तन में नहिं, सक्षम हैं सूक्ष्मज्ञानधारी।।

योगी भी नहिं हैं समर्थ यदि, तो मेरा क्या कहना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।1।।

फिर भी स्तुति के छल से, मम आदर भाव प्रदर्शित है।
हो कल्याणकल्पद्रुम तुम, हम आतम सुख के इच्छुक हैं।।

सब सन्ताप निवारण हित प्रभु! तुम पद वन्दन करना है।
मन मंदिर में तुम्हें बिठाकर, तन को स्वर्णिम करना है।।2।।

ॐ ह्रीं स्वात्माधीनसुखेच्छुकजनकल्याणकल्पद्रुमाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–पूर्णार्घ्य-स्वागता छंद –

वादिराजमनु शाब्दिक-लोको, वादिराजमनु तार्किक-सिंहः।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते, वादिराजमनु भव्य-सहायः।।26।।

(26)

वादिराज मुनि के चरणों में, शत शत वन्दन करना है।
एकीभाव स्तोत्र को पढ़कर, सर्वरोग को हरना है।।टेक.।।

वादिराज मुनि शब्द अर्थ के, ज्ञाता तार्किक सिंह कहे।
वादिराज की काव्य कृती यह, सारे जग में अमर रहे।।

भव्यों पर उपकार हेतु, इस कृति को वन्दन करना है।
एकीभाव स्तोत्र को पढ़कर, सर्वरोग को हरना है।।1।।

इस स्तोत्र से वादिराज, मुनिवर का रोग समाप्त हुआ।
तन मन की स्वस्थता हेतु, मैंने हिन्दी अनुवाद किया।।

आत्म स्वस्थता हेतु ''चन्दनामती'' वन्दना करना है।
एकीभाव स्तोत्र को पढ़कर, सर्वरोग को हरना है।।

ॐ ह्रीं शाब्दिक-तार्किक-काव्यकृत-भव्यगणोत्कृष्टश्रीवादिराजसूरिकृत-एकीभावस्तोत्रस्वामिने श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जाप्य मंत्र – **ॐ ह्रीं सर्वव्याधिविनाशनसमर्थाय श्रीएकीभावस्तोत्रमाहात्म्य-प्रदर्शकाय श्री तीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**

जयमाला

तर्ज –यह शान्त छेवी तेरी.....

प्रभु भक्ती करने से मुक्ति श्री मिलती है।
मन उपवन की मुरझाई सब कलियाँ खिलती हैं,
जयमाला का अर्घ्य चढ़ा नव निधियाँ मिलती हैं।।प्रभु.।।टेक.।।

इस पूजन की बड़ी महिमा-है बड़ी महिमा।
तन रोग नष्ट करने हेतू इसे करना।।
इस एकीभाव की रचना-हाँ रचना।
किया वादिराज मुनिराज ने इसे समझना।।
इसकी कथा पुराणों में ऐसी ही मिलती है,
जयमाला का अर्घ्य चढ़ा नव निधियाँ मिलती हैं।।प्रभु.।।1।।

चौलुक्य नरेश थे जयसिंह-हाँ हाँ जयसिंह।
मुनि वादिराज का आशिर्वाद था उन पर।।
वे कट्टर भक्त थे गुरु के-हाँ हाँ गुरु के।
पर धर्मद्वेषि विद्वान् भी थे कुछ उनके।।
इक दिन धर्मद्वेषि द्वारा मुनि निंदा चलती है,
जयमाला का अर्घ्य चढ़ा नव निधियाँ मिलती हैं।।प्रभु.।।2।।

हुआ कुष्टरोग मुनिवर को-हाँ मुनिवर को।
मुनि विद्वेषी ने कहा बात राजन को।।
राजन् इनको मत पूजो-हाँ मत पूजो।
ये मुनि कुष्टी होते हैं इनको देखो।।

गुरुनिन्दा सुन राजश्रेष्ठि की वाणी खिरती है,
जयमाला का अर्घ्य चढ़ा नव निधियाँ मिलती हैं।।प्रभु.।।3।।

बोला वह राजन सुन लो-हाँ हाँ सुन लो।
गुरुवर तो कंचन कायासम हैं समझो।।
मुनिवर ने सुनी ये बातें-हाँ हाँ बातें।
प्रभु भक्ति लीन होकर स्तोत्र रचा ये।।
कुष्ट दूर हो काया उनकी स्वर्णिम लगती है,
जयमाला का अर्घ्य चढ़ा नव निधियाँ मिलती हैं।।प्रभु.।।4।।

विद्वान् श्रेष्ठि औ राजा-हाँ हाँ राजा।
पहुँचे मुनि ढिग तो तप का तेज वहाँ था।।
कर नमन झुके गुरुपद में-हाँ गुरुपद में।
विद्वेषी थर थर काँप उठा तब मन में।।
मुनि बोले राजन! यह भक्ति की महिमा दिखती है,
जयमाला का अर्घ्य चढ़ा नव निधियाँ मिलती हैं।।प्रभु.।।5।।

यह महिमा देखके सबने-हाँ हाँ सबने।
जिनधर्म किया स्वीकार हृदय से सबने।।
हम भी आए प्रभु पद में-हाँ प्रभु पद में।
''चन्दनामती'' तन मन की स्वस्थता करने।।
एकीभाव स्तोत्र की पूजा सब दुख हरती है,
जयमाला का अर्घ्य चढ़ा नव निधियाँ मिलती हैं।।प्रभु.।।6।।

ॐ ह्रीं सर्वरोगनिवारक एकीभावस्तोत्रनायक श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

–दोहा–

एकीभाव स्तोत्र का, यह विधान सुखकार।
करो ''चन्दनामति'' सभी, भरो सुगुण भण्डार।।1।।

।।इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिः।।

प्रशस्ति

–दोहा–

वीर संवत् पच्चीस सौ, सैंतिस वर्ष महान।
चैत्र शुक्ल तेरस तिथी, मन में आया ध्यान।।1।।

तन मन की आरोग्यता, हेतु पढ़ूँ स्तोत्र।
दो दिन में ही बन गया, हिन्दी में स्तोत्र।।2।।

ज्ञानमती जी मात हैं, गणिनीप्रमुख महान।
उनकी शिष्या चन्दना-मति है मेरा नाम।।3।।

वादिराज मुनि कृती में, मुझसे यदि कुछ भूल।
हुई मुझे वे क्षमाकर, देवें सुख अनुकूल।।4।।

भक्ति शब्द जल बूंद ये, करें हृदय को शांत।
मुक्ताफल सम ये हरें, मन का सब संताप।।5।।

आरती

-आर्यिका स्वर्णमती माताजी (संघस्थ)

तर्ज –माई रे माई.....

एकीभाव स्तोत्र की महिमा सुनो सभी नर नारी।
जिनवर भक्ति व आरति करके मिले स्वस्थता सारी।।
बोलो जय जय जय, बोलो जय जय जय।।टेक.।।

एकबार श्री वादिराज मुनिवर को कुष्ट हुआ था।
प्रभु भक्ति से रोग भग गया एकीभाव रचा था।
इस स्तोत्र को रचते-रचते, चमत्कार हुआ भारी।
जिनवर भक्ति व आरति करके, मिले स्वस्थता सारी।।
बोलो जय जय जय, बोलो जय जय जय।।1।।

आज भी इस स्तोत्र को भविजन श्रद्धा से पढ़ते हैं।
रोग शोक को दूर भगा आरोग्य प्राप्त करते हैं।।
जन्म जरा अरु मरण रोग भी मिट जाते हैं भारी।
जिनवर भक्ति व आरति करके मिले स्वस्थता भारी।
बोलो जय जय जय, बोलो जय जय जय।।2।।

सच्चे मन से तीर्थंकर प्रभु की भक्ति फलती है।
भौतिक सुख क्या आध्यात्मिक सम्पत्ती भी मिलती है।।
यही 'स्वर्णमति' करे कामना, मिले आत्मसुख भारी।
जिनवर भक्ति व आरति करके, मिले स्वस्थता सारी।।
बोलो जय जय जय, बोलो जय जय जय।।3।।

भजन

-ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

तर्ज –जैन धरम के हीरे मोती.....

एकीभाव विधान अनूपम, इसकी महिमा न्यारी है।
रोग शोक को हरने वाला, पाठ बड़ा मनहारी है।।टेक.।।

एक बार श्री वादिराज मुनि, के शरीर में कुष्ट हुआ,
आत्मध्यान में लीन संत ने, उस परिषह को सहन किया।
वीतराग जिनभक्ति से कर ली, कर्मनिर्जरा भारी है।। रोग.....।।1।।

किन्तु धर्म के विद्वेषी ने, जा राजा को भड़काया,
जैन साधु कुष्टी होते हैं, जयसिंह नृप को समझाया।
राजश्रेष्ठि भक्तीवश बोले, मुनि की काया न्यारी है।। रोग.....।।2।।

राजा ने जब कहा दर्श को, राजश्रेष्ठि गुरु सम्मुख आ,
कहें करो जिनधर्म की रक्षा, तब गुरु ने जिनभक्ति किया।
एकीभाव स्तोत्र रचा, काया कंचन कर डारी है।। रोग.....।।3।।

कंचन सी काया लख गुरु की, सबने जयजयकार करा,
धर्मद्वेषि हो गए नतमस्तक, तब गुरु ने यह वचन कहा,
नहीं जैन साधू कुष्टी, जिनधर्म सदा सुखकारी है।। रोग.....।।4।।

गणिनी माता ज्ञानमती की, शिष्या माँ चन्दनामती,
उनके दर्शन से लगता, माँ ज्ञानमती की प्रतीकृती।
नित्य नई रचनाओं से, महकाई ज्ञान फुलवारी है।। रोग.....।।5।।

चमत्कारयुत इस विधान को, करने से आरोग्य मिले।
तन मन स्वस्थ करे आत्मा भी, कंचन सम बन मुक्ति लहे।।
प्रज्ञा गुण से भूषित माता, नित प्रति धोक हमारी है।। रोग.....।।6।।

जब तक धरा गगन सूरज, चंदा तारे हैं इस जग में।
यह विधान महिमाशाली बन, हर प्राणी को ईप्सित दे।।
मुक्तीकन्या वरूँ मात संग, 'इन्दु' भावना प्यारी है।। रोग.....।।7।।

मण्डल का नक्शा

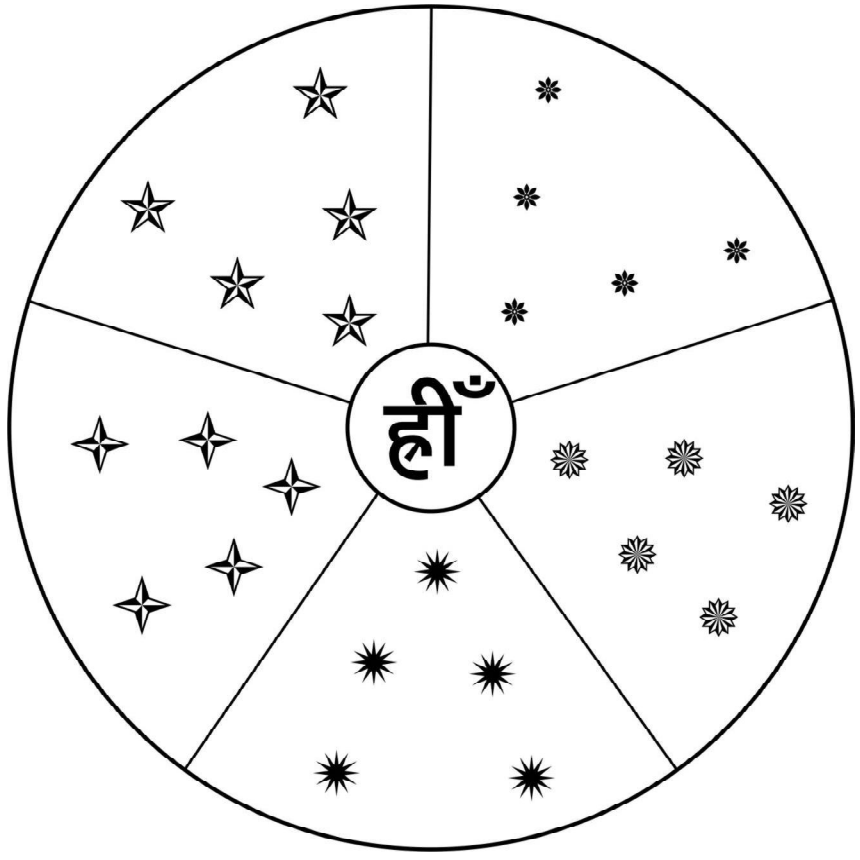

एकीभाव स्तोत्र व्रत एवं कथा

एकीभाव स्तोत्र के रचयिता श्री आचार्य वादिराज वि. की 11वीं शताब्दी के महान् विद्वान थे। वादिराज यह उनकी पदवी थी, नाम नहीं। जगत् प्रसिद्ध वादियों में उनकी गणना होने से वे वादिराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपकी गणना जैन साहित्य के प्रमुख आचार्यों में की जाती है।

वादिराज स्वामी का चौलुक्य नरेश जयसिंह (प्रथम) की सभा में बड़ा सम्मान था। पूर्वकृत पापोदय से आचार्यश्री के शरीर में कुष्ट रोग हो गया। निस्पृही वीतरागी संत अपने आत्मध्यान में ही लीन रहते थे। शरीर की वेदना से उन्हें किसी प्रकार की चिंता नहीं थी किन्तु जिनधर्मद्वेषी एक दुष्ट स्वभावी विद्वान् ने राजसभा में मुनिश्री का घोर उपहास कर राजा से कहा–राजन्! तुम जैनधर्म की इतनी मान्यता करते हो, श्रेष्ठ कहकर उनके साधुओं का सम्मान करते हो पर यह नहीं जानते कि "जैन साधु कोढ़ी (कुष्ट-ग्रस्त)" होते हैं। राजश्रेष्ठी को यह उपहास सहन नहीं हुआ। उसने भक्तिवशात् राजा से कहा–राजन्! यह असत्य है, जैन मुनियों की काया तपाये स्वर्ण के समान सुन्दर और तेजोदीप्त होती है।

राजा ने निर्णय लिया कि प्रातः आचार्यश्री के दर्शनार्थ चला जाये। इधर राजश्रेष्ठी दौड़ता हुआ आचार्यश्री के चरणों में पहुँचा। उसने आचार्यश्री से अपनी करुण कथा कह सुनाई और कहा–प्रभो! अब जिनधर्म की रक्षा का प्रश्न है। आप जो उचित समझें करें, आचार्यश्री ने उन्हें आशीर्वाद दिया और आदिनाथ जी की भक्ति में लीन हो एकीभावस्तोत्र की रचना कर डाली। जिनभक्ति में लीन मुनिश्री जिनेन्द्र भक्ति का वर्णन करते हुए चौथे काव्य में लिखते हैं....हे भगवन्! भव्य जीवों के पुण्योदय से स्वर्ग से माता के गर्भ में आने वाले आपके द्वारा छः माह पूर्व ही यह पृथ्वी कनकमयता को प्राप्त करा दी गई थी। हे जिनेन्द्र! ध्यानरूपी द्वार से मेरे मनरूपी मंदिर में प्रविष्ट हुए आप कुष्ट रोग से पीड़ित मेरे इस शरीर को सुवर्णमय कर रहे हो, इसमें क्या आश्चर्य है! अथवा हे जिन! जो कोई आपके दर्शन करता है, वचनरूपी अमृत का भक्तिरूपी पात्र से पान करता है तथा कर्मरूपी मन से आप जैसे असाधारण आनन्द के धाम दुर्वार काम के मदहारी व प्रासाद की अद्वितीय भूमिरूप पुरुष में ध्यान द्वारा प्रवेश करता है, उसे क्रूराकार रोग और कंटक कैसे सता सकते हैं?

जिनभक्ति के प्रसाद से रातभर में ही उनका गलित कुष्ट ग्रस्त शरीर स्वर्णवत् चमकने लगा। प्रातः राजा राजश्रेष्ठी और जिनधर्मद्वेषी सभी आचार्यश्री के दर्शनार्थ चल दिये। उसी जंगल में आ पहुँचे, जहाँ मुनिश्री ध्यान में लीन थे। उनका तेज दूर तक फैल रहा था। चमकती देहकान्ति को देखते ही राजश्रेष्ठी आनन्दविभोर हो गया। राजा ने पूछा–श्रेष्ठी, क्या ये ही आपके गुरु हैं? सेठ जी ने कहा–जी! हाँ। राजा उनके पावन चरणों में नतमस्तक हुआ और द्वेषियों की ओर कोप भरी दृष्टि से देखने लगा। सबके मन थर-थर काँपने लगे। मुनिश्री ने कहा–राजन्! यह सत्य है कि मेरे शरीर में कुष्ट था, अभी भी मेरी कनिष्ठा अंगुली में इसका प्रभाव शेष है किन्तु "जैनधर्म के सभी साधु कोढ़ी होते हैं" इस आक्षेप को दूर कर जिनधर्म की प्रभावना के लिए मैंने भक्ति के प्रसाद से यह रोग एक रात में दूर कर दिया है अतः इन बेचारों की कोई गलती नहीं। राजा मुनिश्री के वचनों से ऐसा सुनकर जैन दर्शन से बहुत प्रभावित हुआ। राजा ने व जिनधर्म द्वेषियों ने आचार्यश्री से क्षमा प्रार्थना की और जिनधर्म को धारणकर सम्यग्दर्शन प्राप्त किया।

व्रतविधि–इस एकीभाव स्तोत्र में छब्बीस पद्य हैं, उन काव्यों के अनुसार छब्बीस (26) व्रत किये जाते हैं। उत्तम विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार और जघन्य व्रत एकाशन करना है। इसमें तिथियाँ खुली हैं, जब जो तिथि सुविधाजनक हो, उसी दिन व्रत करें। व्रत के दिन स्तोत्र पाठ करें। चौबीस तीर्थंकर भगवान की प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक करके पूजा करें पुनः प्रत्येक मंत्र पृथक्-पृथक् हैं, उनमें से क्रम से एक-एक जाप्य करें।

समुच्चय मंत्र–**ॐ ह्रीं सर्वव्याधिविनाशनसमर्थाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय नमः।**

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. **ॐ ह्रीं एकीभावसदृशकर्मबंधनाशनसमर्थाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय नमः।**
2. **ॐ ह्रीं हृदयस्थितपापान्धकारविनाशनसमर्थाय ज्योतीरूपाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय नमः।**
3. **ॐ ह्रीं स्तोत्रमंत्रप्रभावेनदेहस्थविषमव्याधिनिष्कासनसमर्थाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय नमः।**
4. **ॐ ह्रीं गर्भावतारप्राक्पृथ्वीकनकमयकरणसमानभाक्तिकतनुसुवर्णीकरण-समर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।**

5. ॐ ह्रीं भक्तजनहृदयस्थिततत्सर्वक्लेशविनाशनसमर्थाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय नमः।
6. ॐ ह्रीं त्वन्नयकथापीयूषवापीमध्यनिर्मग्नभाक्तिकदुःखदावोप-तापशांतकरण-समर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
7. ॐ ह्रीं पादन्यासस्थलस्वर्णकमलमिवत्वत्स्पृशन्ममभक्तस्य-सर्वश्रेयः-प्रदायकाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
8. ॐ ह्रीं भक्तिपात्र्यात्वद्वचनामृतपिबन्भाक्तिक दुर्वाररोगनिवारण-समर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
9. ॐ ह्रीं मानस्तम्भसदृश-त्वत्समीपत्वप्राप्तभाक्तिकजनमान-रोगहरणसमर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
10. ॐ ह्रीं त्वन्मूर्तिस्पर्शितवायुना निरवधिरोगधूलिधुन्वन्समर्थाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय नमः।
11. ॐ ह्रीं भाक्तिकजनभव-भवदुःखनिवारणसमर्थपरमदयालु-सर्वेशाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।
12. ॐ ह्रीं मणिजयमालिकया त्वन्नमस्कारमंत्रजपद्भाक्तिकगण-स्वर्गलक्ष्मीप्रभुत्व-करणसमर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
13. ॐ ह्रीं अनवधिस्त्वदुत्कृष्टभक्तिकुञ्चिकानिमित्तेनमुक्ति-द्वारोद्घाटनकारण-समर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
14. ॐ ह्रीं भवद्भारतीरत्नदीपेन मुक्तिपथावलोकनसामर्थ्य-प्रदायकाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय नमः।
15. ॐ ह्रीं कर्मक्षोणीपिहितात्मज्योतीनिधिप्रदायकाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय नमः।
16. ॐ ह्रीं त्वद्भक्तिगंगामध्यावगाहकभक्तगणसर्वकल्मष-क्षालनसमर्थाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
17. ॐ ह्रीं त्वद्ध्यायन्भाक्तिकस्य सोऽहमितिमतिप्रदायकाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय नमः।
18. ॐ ह्रीं सप्तभंगीतरंगयुत-त्वद्वाक्समुद्रमंथनोद्भवपरमामृत-प्रापकाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
19. ॐ ह्रीं शस्त्रवसनभूषाविरहितपरमसुंदरस्वरूपाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय नमः।

20. ॐ ह्रीं भवसमुद्रपारंगतसिद्धिकान्तापतित्रैलोक्यप्रभु-स्तुतिश्लाघनाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
21. ॐ ह्रीं भक्तिपीयूषपुष्टभव्यगणाभिमतफलप्रदपारिजाताय श्रीतीर्थंकरपरम-देवाय नमः।
22. ॐ ह्रीं कोपप्रसादविरहितपरमोपेक्षि-भुवनतिलकप्राभवसहिताय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय नमः।
23. ॐ ह्रीं सकलतत्त्वग्रन्थस्मरणविषयिबुद्धिप्रदायकाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
24. ॐ ह्रीं अनंतसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपाय भाक्तिकजनपञ्चकल्याण-प्रदायकाय श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।
25. ॐ ह्रीं स्वात्माधीनसुखेच्छुकजनकल्याणकल्पद्रुमाय श्रीतीर्थंकर-परमदेवाय नमः।
26. ॐ ह्रीं शाब्दिक-तार्किक-काव्यकृत-भव्यगणोत्कृष्टश्रीवादिराज-सूरिकृतएकी-भावस्तोत्रस्वामिने श्रीतीर्थंकरपरमदेवाय नमः।

यह व्रत सर्व प्रकार के रोगों को शांत करके शरीर को आरोग्य प्रदान करने वाला है और परम्परा से आत्मा को स्वस्थ- शुद्ध करके अतीन्द्रिय मोक्षसुख प्राप्त कराने वाला है। साथ ही संसार के भी उत्तम-उत्तम सुखों को देने वाला है।